|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 12: भक्तियोग

2/2 (श्लोक 11-20), रविवार, 09 मार्च 2025

विवेचक: गीता प्रवीण ज्योति जी शुक्ला

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/_3EKv2gq2EI

श्रेष्ठ उपासक के लक्षण

परमपिता परमेश्वर की आराधना, गुरु चरणों की वन्दना, हनुमान चालीसा के पाठ व दीप प्रज्वलन करते हुए आज के सुन्दर विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

आदरणीय विवेचिकाजी ने सभी बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा कि पिछले अध्याय में हमने देखा कि भक्त कितने प्रकार के होते हैं? सच्चे भक्त के क्या गुण होते हैं? भक्ति का कौन सा मार्ग सरल है? कौन सा कठिन है? हमारे लिये कौन सा मार्ग उपयुक्त है? सगुण उपासक कैसे होते हैं? निर्गुण उपासक कैसे होते हैं?

निर्गुण उपासना थोड़ी कठिन होती है क्योंकि इसमें कोई साकार छवि नहीं होती है। इस प्रकार विभिन्न भक्तियों एवं उपासनाओं के प्रकार हमने देखे।

बच्चों से कुछ प्रश्न पूछे गये जो कि उनकी मोबाइल स्क्रीन (mobile screen) पर ही आ गये थे।

प्रश्न- हम कितने प्रश्न पूछने वाले थे?
1) 29 (उनतीस)□ 2) 39 (उनतालीस)□
3) 19 (उन्नीस) □ 4) 49 (उनचास) □
5) नहीं पता

अधिकांश बच्चे उत्तर नहीं दे पा रहे थे।
आदरणीय विवेचिका जी ने बच्चों का उत्साहवर्धन करते हुए उन्हें उत्तर देने का आग्रह किया तथा उन्हें उचित उत्तर बताया। उचित उत्तर था उनतालीस, जो कि तीस प्रतिशत बच्चों ने बताया।

तत्पश्चात उन्होंने आगे के श्लोकों का विवेचन प्रारम्भ करने से पहले बताया कि बच्चे सभी श्लोकों के अर्थों को ध्यानपूर्वक सुनें तथा समझें।

12.11, 12.12

अथैतदप्यशक्तोऽसि, कर्तुं(म्) मद्योगमाश्रितः|
सर्वकर्मफलत्यागं(न्), ततः(ख्) कुरु यतात्मवान्||11||
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्, ज्ञानाद्ध्यानं(वँ) विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग:(स्),त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥12.12॥

अगर मेरे योग (समता) के आश्रित हुआ (तू) इस (पूर्व श्लोक में कहे गये साधन) को भी करने में (अपने को) असमर्थ (पाता) है, तो मन इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण कर्मों के फल की इच्छा का त्याग कर।
अभ्यास से शास्त्रज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है (और) ध्यान से (भी) सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग (श्रेष्ठ है)। क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है अर्थात् हमारे जो वेद एवं पुराण हैं जैसे रामायण, महाभारत तथा गीता, वे श्रेष्ठ हैं। ज्ञान से भी अधिक ईश्वर का ध्यान करना श्रेष्ठ है। ईश्वर का ध्यान अर्थात् उनका चिन्तन करना, भजन करना। ध्यान से भी अधिक श्रेष्ठ है किये गये कर्मों का त्याग करना अर्थात् हम जो भी कर्म करेंगे, उन्हें ईश्वर को समर्पित करते चलेंगे, फिर उसका जो भी परिणाम आयेगा उसे हम स्वीकार करेंगे कि यह ईश्वर की इच्छा है इसलिए ऐसा हुआ।

हमने दूसरे अध्याय का अड़तालीसवाँ श्लोक सुना है।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।

इस श्लोक से हमें पता चलता है कि कर्म करने में हमारा अधिकार है किन्तु उसके फल पर हमारा अधिकार नहीं है। उसके फल पर ईश्वर का अधिकार है। इसीलिए उस फल को ईश्वर को समर्पित कर दीजिये। मान लीजिये आपकी परीक्षा के अङ्क आपकी आशा के अनुरूप नहीं आये, तो इसे ईश्वर को अर्पण कर दीजिये।

अभ्यास, ज्ञान, ध्यान तथा फल त्याग, इन सभी में फल का त्याग, यह सबसे श्रेष्ठ है। जब हम इसका अभ्यास करेंगे तो हमे इसका अभ्यास हो जायेगा।

12.13

अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख्) करुण एव च|
निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः क्षमी||13||

सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित और मित्र भाव वाला (तथा) दयालु भी (और) ममता रहित, अहंकार रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझ में अर्पित मन बुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। (12.13-12.14)

विवेचन- श्रीभगवान् ने अर्जुन के द्वारा हम सभी को भक्त के लक्षण बताये हैं।

सभी बच्चों से पुस्तिका और लेखनी लेकर बैठने का आग्रह किया गया।
सबसे पहला भक्त का लक्षण है किसी से घृणा न करना। कभी-कभी किसी कारणवश हमारे मन में किसी व्यक्ति के प्रति घृणा का भाव आ जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। हमारे मन में किसी के प्रति कोई बुरा भाव न आये, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

यह लक्षण दस अङ्कों का था। यदि आपके मन में किसी के प्रति घृणा नहीं है तो पूरे दस अङ्क आपको मिलेंगे।

अगला लक्षण है सबसे मैत्री रखना। हमे सभी के प्रति मित्रता का भाव रखना है।

इस लक्षण के भी दस अङ्क हैं। यदि आप अपने मित्र बना कर रखते हैं तो आपके दस अङ्क बढेंगे और यदि आपके शत्रु अधिक हैं तो आपके अङ्क घट जायेंगे।

अगला लक्षण है दयालु होना। जैसे कभी-कभी हम छोटे से पिल्ले को कङ्कड़ मार देते हैं। यह अनुचित है। हमारे हृदय में सभी के प्रति करुणा का भाव होना चाहिये।

यदि आपके मन में करुणा का भाव है तो दस अङ्क आपको मिलेंगे और यदि नहीं तो कम हो जायेंगे।

सभी बच्चों से अपने अङ्कों को जोड़ते रहने का अनुरोध किया गया।
अगला लक्षण है मेरे-तेरे की भावना नहीं होनी चाहिये। अपनी प्रत्येक वस्तु को लेकर अधिकार की भावना नहीं होनी चाहिये। ऐसा करने से हम ईश्वर के प्रिय हो जायेंगे।

अगला लक्षण है निरहङ्कारी होना अर्थात् अहङ्कार न होना। जैसे कक्षा में प्रथम आने पर हमे अहङ्कार हो जाता है, यह उचित नहीं है।

अगला लक्षण है सुख और दुःख दोनों परिस्थितियों में समान रहना। जैसे कभी कुछ हमारे मन का हुआ तो अति प्रसन्न होना और कुछ मन का नहीं हुआ तो दुःखी हो जाना। हमें इससे बचना चाहिये।
सुख हो या दुःख हो, हमें समान रूप से स्वीकार करना चाहिये। हमें सन्तुलित रहना चाहिये। कभी हमारे अङ्क अधिक आते हैं, कभी नहीं आते हैं। हर स्थिति में हमें समान रहना है।

अगला लक्षण है क्षमा कर देना। कभी-कभी हम किसी की भूल को क्षमा नहीं करते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। कोई अपनी भूल के लिये क्षमा याचना करे अथवा नहीं, हमें उसे क्षमादान देना चाहिये।

आप सभी ने यह गीत अवश्य सुना होगा-

मनुज गलती का पुतला है, जो अक्सर हो ही जाती है,
मगर ठीक कर ले जो गलती को, उसे इन्सान कहते हैं।

त्रुटियाँ तो सबसे हो जाती हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम किसी को क्षमा न करें। क्षमा करके उसे विस्मरण भी कर देना है।

प्रश्न- अब सभी बच्चे यह देखें कि कितने प्रश्न हुए हैं?
उत्तर- अभी तक सात प्रश्न हुए हैं। सभी बच्चों को स्वयं को सत्तर में से अङ्क देने को कहा गया।

12.14

सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्), यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः॥12.14॥

विवेचन- सन्तुष्टि अर्थात् सदा सन्तुष्ट रहना। जैसे जब हम नयी कक्षा में जाते हैं, हमें सब कुछ नया चाहिये होता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि जो वस्तु हमारे पास पहले से ही है, उसे पुनः नहीं लेना है। जितना ज्यादा वस्तुओं की इच्छा करेंगे उतना ही हमें कष्ट होगा, अतः हमें अपनी इच्छायें सीमित रखनी चाहिये।

आपने दूरदर्शन पर नोबिता और डोरेमोन का धारावाहिक देखा होगा। उसमें नोबिता सदा असन्तुष्ट रहता है और डोरेमोन से कुछ न कुछ माँगता ही रहता है। मन कि इच्छा पूर्ण न होने पर वह रोने लगता है। हमें नोबिता जैसा नहीं बनना है। हमें अर्जुन जैसा बनना है।

अगला लक्षण है यतात्मा। कभी-कभी अपनी पसन्द का कार्यक्रम देखने के लिये भाई-बहन आपस में झगड़ते हैं और उनके झगड़े में टी.वी का रिमोट गिरकर टूट जाता है। हमें ऐसा नहीं करना चाहिये। कभी आप अपने मन का कार्यक्रम देखिये और कभी अपने भाई बहन के मन का।

कभी-कभी पढ़ाई करते समय ही हमें सारी बातें जैसे खाना, खेलना सब याद आता है। हमें ऐसा नहीं करना है।पढ़ाई के समय पढ़ाई और खेलने के समय खेलना।

दृढ़ निश्चय का अर्थ है किसी काम को करने का पक्का निर्णय करना, जैसे हम योजना बनाते हैं कि कल से हम योग करेंगे किन्तु जब कल आता है तो हम समय पर उठ ही नहीं पाते। ऐसा नहीं होना चाहिये। ईश्वर का प्रिय भक्त होने के लिये हम जो सङ्कल्प लें, उसे पूर्ण करके दृढ़ निश्चयी बनना चाहिये।

एक स्वामी जी ने कहा है कि जब आप आपका सङ्कल्प पूर्ण न कर सको तो अपने हाथों से अपने गाल पर दो थप्पड़ मारने चाहिए। ऐसा करने से हमारी यह प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी।

हमारे मन और मस्तिष्क में निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है। कभी-कभी किसी कार्य के करने अथवा न करने को लेकर हम व्यथित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में श्रीभगवान् अपने मन और मस्तिष्क को उन्हें अर्पित करने को कहते हैं। उसके पश्चात् कोई द्वन्द्व नहीं रहता है। ऐसे भक्त ईश्वर के प्रिय भक्त होते हैं। आपको भी ईश्वर का प्रिय होने के लिये ऐसा ही करना होगा।

बच्चों से पूछा कि कौन-कौन ईश्वर का प्रिय होना चाहता है? तो बहुत सारे बच्चों ने हाथ उठाये जिसकी विवेचिका जी ने बहुत प्रशंसा की।

अभी तक बारह भक्त लक्षण हो चुके हैं अर्थात् एक सौ बीस अङ्कों में से कितने अङ्क मिले यह जोड़ते जाना है।

12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः|
हर्षामर्षभयोद्वेगैः(र्), मुक्तो यः(स्) स च मे प्रियः||15||

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

विवेचन- जो न किसी को त्रस्त करता है और न ही किसी से त्रस्त होता है, जैसे कई बार कक्षा में हमें हमारे मित्र किसी प्रकार से त्रस्त करते हैं या हम उन्हें। उदहारण के लिये उनकी वस्तु छिपा देना या चोटी खींचना इत्यादि। कभी-कभी हम किसी का नाम बदल देते हैं जैसे अक्षय नामक बालक को अक्षया कहकर चिढाते हैं। ऐसा नहीं करना है। तेरहवें और चौदहवें क्रमाङ्क पर श्रीभगवान् हमें यही बताते हैं।

आगे श्रीभगवान् बताते हैं कि हमें अति हर्षित होने से बचना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रसन्न होने के क्षणों में हमें प्रसन्न नहीं होना है। इसका अर्थ यह है कि अत्यधिक प्रसन्न नहीं होना है या दुःख के क्षणों में अत्यधिक दुःखी भी नहीं होना है। हर स्थिति में सन्तुलित रहना है।

इसके बाद का भक्त लक्षण है इर्ष्या रहित होना। कोई कुछ अच्छा कार्य करता है तो उससे इर्ष्या करने के स्थान पर उसकी

सराहना करनी है। जैसे यदि आपके किसी सहपाठी के अङ्क अच्छे आए तो उसकी प्रशंसा करनी है न कि ये कहना है कि पिछली बार तो इसके कम अङ्क आये थे अभी अधिक आ गये तो क्या हुआ।

अगला लक्षण है भय रहित रहना। जैसे हम छिपकली या चूहे से डरते हैं। अब यह कल्पना कीजिये कि वह छिपकली या चूहा बहुत सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित है। ऐसी कल्पना के बाद आपका भय दूर हो जायेगा।

आप सबने भजन सुना होगा-

हमारे साथ श्री रघुनाथ तो किस बात की चिन्ता

किन्तु भयभीत न होने का अर्थ यह नहीं है कि हम किसी भी परिस्थिति में डरें ही न। हमें ऐसा नहीं करना है कि कोई बड़ा या भयानक पशु आने पर भी न हटें।

कभी-कभी हम बहुत उद्वेलित हो जाते हैं। इस परिस्थति से हमें स्वयं को बचाना है।

यदि हम ऊपर बताये हुए लक्षणों का पालन करते हैं तो हम ईश्वर के प्रिय भक्त हो जाते हैं।

12.16

अनपेक्षः(श्) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः|
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः||16||

जो अपेक्षा (आवश्यकता) से रहित, (बाहर-भीतर से) पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से रहित (औरः सभी आरम्भों का अर्थात् नये-नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

विवेचन- बहुत अधिक अपेक्षाओं से रहित अर्थात् अनपेक्षित रहना चाहिये। किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु से अधिक आशाएँ नहीं लगानी चाहिये।

शुचि का अर्थ होता है भीतर से अर्थात् मन से और बाहर से अर्थात् शरीर से शुद्ध होना। अन्दर से अर्थात् मन से हम किसी के प्रति बुरी भावना न रखें। स्वच्छता से रहना अर्थात् शरीर की शुद्धि, अपने आस-पास के वातावरण की स्वच्छता। बाहर की स्वच्छता तो हम जानते हैं किन्तु भीतर या मन की स्वच्छता के लिये अच्छे कार्य करने चाहिये जैसे गीता जी का पठन, ध्यान करना इत्यादि। ऐसा करने से हमारा मन स्वच्छ हो जायेगा और हम ईश्वर के प्रिय बन जायेंगे।

दक्ष का अर्थ होता है हम जो भी कार्य करें उसमें पारङ्गत हो जाएँ अर्थात् यदि हम लिख रहे हैं तो स्वच्छ और सुन्दर अक्षर लिखें। यदि साइकिल चला रहे हैं तो बहुत अच्छे से चलायें। हम जो भी कार्य करें उसमें अपना शत प्रतिशत योगदान दें। अभ्यास करते जायेंगे तो हम किसी भी कार्य में दक्ष होते जायेंगे और ईश्वर के प्रिय होते जायेंगे।

उदासीन का अर्थ है किसी भी परिस्थिति में न अधिक प्रसन्न होना न अधिक दुःखी होना। मन का सन्तुलन बनाये रखना। जैसे कम अङ्क प्राप्त होने पर अधिक शोक न करना और अधिक अङ्क प्राप्त होने पर अधिक प्रसन्न न होना। हमेशा सन्तुलित रहना चाहिए।

दूसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने कहा भी है-

समत्वं योग उच्यते

सन्तुलन ही सबसे अच्छा गुण है।

गतव्यथ: का अर्थ है जिसके सारे दुःख समाप्त हो गये हैं। हम छोटी-छोटी बातों पर बहुत अधिक दु:खी हो जाते हैं। हमें दुःखों से विचलित नहीं होना है।

सभी बच्चों से उनके अङ्कों का अवलोकन करने के लिये कहा गया।

अगला भक्त लक्षण है सर्वारम्भपरित्यागी अर्थात् सभी आरम्भों का त्याग करने वाला। किसी कार्य को प्रारम्भ न करना, जैसे यदि समोसे लाने की बात हुई तो भागकर समोसे लाने के लिये चले गये। ऐसा नहीं करना है। जब समोसे आयेंगे तभी हम उन्हें खायेंगे। किसी भी कार्य का आरम्भ हम नहीं करेंगे, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर योगदान देंगे।

ये सब ईश्वर के प्रिय भक्त के लक्षण हैं।

12.17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति|
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स्) स मे प्रियः||17||

जो न (कभी) हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है (और) जो शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठा हुआ (राग-द्वेष रहित) है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

विवेचन- पच्चीसवाँ लक्षण है अधिक प्रसन्न न होना अर्थात् जो अधिक हर्ष नहीं करता है और छब्बीसवाँ लक्षण है अधिक द्वेष न करना। जो व्यक्ति किसी से भी द्वेष नहीं करता है।

बच्चों से कहा गया कि अभी तक आपके पूर्णांक दो सौ साठ हो चुके हैं। आप सभी देखें कि अब तक आप सभी के प्राप्ताङ्क कितने हैं?

सत्ताईसवाँ लक्षण है अधिक शोक न करना और अट्ठाईसवाँ लक्षण है जो अधिक कामनाएँ नहीं करता है। कुछ बच्चे निरन्तर कोई न कोई इच्छा प्रगट करते रहते हैं। एक के बाद एक, उनकी इच्छाएँ पूर्ण ही नहीं होती हैं। ऐसे बच्चे ईश्वर के प्रिय नहीं हो सकते हैं।

प्रश्न- आप सब में से ऐसा कौन-कौन है?
उत्तर- ऐसा कोई नहीं है क्योंकि आप सभी बच्चे गीता पढ़ते हैं।

शुभ और अशुभ का परित्याग। अशुभ कर्मों का तो त्याग करना ही चाहिये परन्तु शुभ का त्याग कैसे होगा? उदहारण के लिये सोना हमारे स्वास्थ्य के लिये बहुत अच्छा होता है किन्तु एक निश्चित अन्तराल के बाद सोना अच्छा नहीं होगा। अवकाश के दिन हम थोड़ा अधिक सोना चाहते हैं, यह ठीक नहीं है।

अभी तक तीस लक्षण हो चुके हैं। अब पूर्णांक तीन सौ हो गये हैं।

इन सभी लक्षणों से युक्त भक्त श्रीभगवान् का अति प्रिय भक्त है।

12.18

समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः|

शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः||18||

(जो) शत्रु और मित्र में तथा मान-अपमान में सम है (और) शीत-उष्ण (शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन बुद्धि की अनुकूलता-प्रतिकूलता) में सम है एवं आसक्ति रहित है (और) जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने न होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित (और) स्थिर बुद्धिवाला है, (वह) भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है। (12.18-12.19)

विवेचन- अपने मित्र एवं शत्रु दोनों के प्रति समान भाव रखना अर्थात् शत्रु के लिये भी बुरा न सोचना ये भक्त के लक्षण हैं।

मान और अपमान दोनों में समान बने रहना अर्थात् जब प्रशंसा होती है तब हमें बहुत अच्छा लगता है किन्तु जब कोई हमारा अपमान करता है तब हमे बहुत बुरा लगता है, जैसे गृहकार्य न करने पर हमें शिक्षक ने कुछ कहा तो हमें अच्छा नहीं लगता है और हम पूरे दिन दुःखी रहते हैं, किन्तु हमें इस स्थिति में भी वैसा ही रहना है जैसा सम्मान होने पर हम रहते हैं।

शीत अर्थात् ठण्डक में और ऊष्ण अर्थात् गर्मी में भी हमें समान रहना है। अधिक ठण्ड पड़ने पर हम अधिक गरम कपड़े पहनते हैं और गर्मी पड़ने पर गर्मी से त्रस्त हो जाते हैं। हमें दोनों ही स्थितियों में समान रहने का प्रयत्न करना है।

सुख और दुःख का तो हमें पता है कि सुख आने पर अधिक प्रसन्न नहीं होना और दुःख आने पर अधिक दुखी नहीं होना चाहिये।

अपने अङ्कों को जोड़ते रहने के लिये सभी बच्चों से कहा गया।

सङ्गविवर्जित का अर्थ है आसक्ति से हट जाना। उदहारण के लिये सभी बच्चों को टी वी देखना बहुत अच्छा लगता है। यदि किसी कारणवश उन्हें न देखने को मिले तो वे अकस्मात् रोने लग जाते हैं। इन सब वस्तुओं के लिये न रोना या आसक्त न होना सङ्ग विवर्जित कहलाता है। यदि कोई वस्तु न मिले तो उसके लिये हमें स्वतः को विचलित नहीं करना चाहिये। यदि आप विचलित होते हैं तो स्वतः को कम अङ्क दें, यदि सन्तुलित रहते हैं तो मध्यम अङ्क दें और यदि आपको कोई अन्तर नहीं पड़ता है तो अधिक अङ्क दें।

12.19

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्|
अनिकेतः(स्) स्थिरमतिः(र्), भक्तिमान्मे प्रियो नरः||19||

विवेचन- कोई हमारी स्तुति करे अथवा निन्दा करे, स्वयं पर हम उसका प्रभाव न पड़ने दें। दोनों ही परिस्थितियों में हम समान रहें। किसी की अनुपस्थिति में उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। सदैव सकारात्मक बातें करनी चाहिये।

हमें मननशील रहना चाहिये अर्थात् अच्छी बातों को सदा अपने विचारों में रखना चाहिये।

जो मिला है उसके साथ हमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। हम जितनी कम इच्छाएँ रखेंगे उतने ही सुखी रहेंगे।

अनिकेत का अर्थ है जिस घर में हम रहते हैं, उसके प्रति अत्यधिक मोह। बहुत से बच्चों को विद्यालय जाना नहीं अच्छा लगता क्योंकि उन्हें अपने घर में रहना ही अच्छा लगता है। हमें ऐसा नहीं बनना है। यदि कभी घर छोड़कर जाना पड़े तो उसके लिये भी तैयार रहना है।

स्थिर बुद्धि वाला अर्थात् सदा केन्द्रित मस्तिष्क से कार्य करने वाला। जब हम पढ़ने बैठें तब मन लगाकर पढ़ें, उस समय खेलने या मनोरञ्जन के बारे में न सोचें।

अब विवेचिका जी ने सभी बच्चों को तीन सौ नब्बे में से अपने प्राप्ताङ्क देखने के लिये कहा।

श्रीभगवान् ने यह सब कुछ जो कहा उसे जीवन में कैसे लाना है? इसके लिये अगला श्लोक देखने के लिये आदरणीय विवेचिका जी ने आग्रह किया।

12.20

ये तु धर्म्यामृतमिदं(यँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12.20॥

परन्तु जो (मुझ में) श्रद्धा रखने वाले (और) मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत का जैसा कहा कहा है, (वैसा ही) भली भांति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् अब कहते हैं कि जो भक्त इन उनतालीस लक्षणों का अनुसरण करते हैं, वे मुझे अतिप्रिय हैं। इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- प्रद्युम्न भैया
प्रश्न- यदि कृष्ण जी कौरवों में जाते तो क्या होता?
उत्तर- यदि ऐसा होता तो कौरवों के जीतने की सम्भावना बढ़ जाती। ऐसा तभी होता जब कौरव सत्य के साथ होते।

प्रश्नकर्ता- यश्वी दीदी
प्रश्न- जब महाभारत का युद्ध हुआ तब अर्जुन की आयु कितनी थी?
उत्तर- अर्जुन की आयु महाभारत युद्ध के समय लगभग बयासी से नब्बे वर्ष के बीच में रही होगी।

प्रश्नकर्ता- यश्वी दीदी
प्रश्न- महाभारत युद्ध कितने वर्ष पहले हुआ था?
उत्तर- महाभारत युद्ध लगभग इक्यावन सौ इकसठ वर्ष पहले हुआ था।

प्रश्नकर्ता- नव्या पण्डिता दीदी
प्रश्न- महाभारत का युद्ध क्यों हुआ था?
उत्तर- महाभारत का युद्ध अनेक बुरे कर्मों के कारण हुआ था। कौरव पाण्डवों को उनके हिस्से का राज्य नहीं देना चाहते थे। यह धर्म और अधर्म के बीच का युद्ध था।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||